भूदान किसलिअे ?

रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स नं० १५

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १९ सम्पादक : मगनभाई प्रभुदास देसाई अंक २२

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

अहमदाबाद, शनिवार, ता० ३० जुलाअी, १९५५

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

भूदान — प्रेम और करुणाका आन्दोलन

[श्री राजाजी तिरुतुराअीपुंडीमें जून ४ और ५ को हुअे तामिलनाडके तृतीय सर्वोदय संमेलनके अध्यक्ष थे। संमेलनमें अुन्होंने पहले दिन तामिलमें जो भाषण दिया था, अुसका सारांश नीचे दिया जा रहा है। दूसरे दिनका अुनका अुपसंहारात्मक भाषण अगले अंकमें दिया जायगा। यह सारांश यहां अुनके भाषणकी जुलाअी, १९५५ के 'सर्वोदय' में प्रकाशित रिपोर्टसे दिया गया है।]

हमने आजादी प्राप्त कर ली है। अब हमें अपनी शक्तिका निर्माण करना है। कोअी १५० वर्ष तक हम अंग्रेजी राज्यकी गुलामीमें रहे और लगभग अेक हजार वर्ष तक हमने स्वतंत्रताका अुपभोग नहीं किया। आज हम पिंजड़ेसे मुक्त आजाद पक्षीकी तरह हैं, और स्थिर होने तथा जमनेमें हमें काफी वक्त लगेगा।

सर्वोदय — सबका सुख

आजादीके बाद अब हमारा दूसरा कदम अपनी समृद्धि और सुखके निर्माणकी कोशिशका होना चाहिये। अुसका अुपाय है सर्वोदय। सर्वोदयमें स्पर्धा और संघर्षके लिअे कोअी स्थान नहीं हो सकता। सर्वोदय अैसा अुपाय है जिसके द्वारा सब लोग सुखी हो सकते हैं। मनकी और हृदयकी पवित्रता सर्वोदयका बुनियादी आधार है। यह काम अैसा है कि कोअी सरकार अुसे अपने कानूनोंके जरिये नहीं कर सकती।

सर्वोदय कोअी संस्था या संघटन नहीं है

हमें हमेशा यह याद रखना चाहिये कि सर्वोदय संस्था या संघटन नहीं है। अुसकी कोअी समिति नहीं हो सकती है, न अुसका कोअी अध्यक्ष या मंत्री हो सकता है। वह कोअी ट्रस्ट या मठ नहीं है। पिता और पुत्रमें पारस्परिक प्रेम, मालिक और नौकरमें सद्भाव, घर पर आये भूखेको अन्न-दान या सत्य-भाषण आदि चारित्रिक नियमोंका पालन करानेके लिअे क्या कोअी संस्था हो सकती है? जाहिर है कि यह काम किसी संस्थाके बूतेका नहीं है। अिसी तरह सर्वोदयके लिअे कोअी संघटन नहीं हो सकता।

सर्वोदय अेक जीवन-पद्धति है

सर्वोदय अेक जीवन-पद्धति है। अिस सभामें स्वागत-भाषण, संदेश-वाचन आदिको सुनकर और लाअुड-स्पीकरों आदिकी आपकी व्यवस्थाको देखकर मनमें खयाल आता है कि कहीं सर्वोदयकी भी संस्था तो नहीं बन गयी है। आप याद रखें कि अगर अुसे संस्थाका रूप दिया जायगा तो अिसका मतलब यह होगा कि वह निष्प्राण हो गया है। कृपया अुसे संस्थाका रूप मत दीजिये। आप अुसे अेक आन्दोलन ही रहने दीजिये, जो लोगोंको धर्मका अनुसरण करनेमें मार्गदर्शन करे।

सर्वोदय और भूमि-समस्या

सर्वोदयमें जो कुछ अच्छा है, वह सब आ जाता है। गांधीजी अैसी आकांक्षा रखते थे कि सब लोग शुद्ध जीवन बितायें; अिसीके लिअे अुन्होंने सबके सामने सर्वोदयका आदर्श रखा। सर्वोदयमें सारे रचनात्मक कार्योंका समावेश हो जाता है। अैसा कोअी रचनात्मक कार्य हो जिसे दूसरे लोग न कर रहे हों तो वह सर्वोदयके कार्यकर्ताओंको करना चाहिये।

भूमिकी समस्या सुलझाना अेक कठिन कार्य है। भूमिके मालिक अपना अधिकार दूसरोंको खुशीसे सौंप देनेके लिअे आसानीसे तैयार नहीं हो सकते। अिसलिअे भूदान-कार्य अेक कठिन कार्य है। लोग दूसरोंके लिअे कपड़ा और पैसा तो आसानीसे दे देते हैं, लेकिन जमीन देनेमें अुन्हें आगापीछा होता है।

भूदान-कार्य युद्ध नहीं है

भूदान-आन्दोलन किसीके खिलाफ लड़ा जा रहा युद्ध नहीं है। दान और युद्ध असंगत वस्तुअें हैं। दानमें हिंसाके लिअे कोअी स्थान नहीं है। युद्धमें हिंसा होती है, जोर-जबरदस्ती चलती है। कार्यकर्ताओंको दान-कार्य और युद्धका यह मूलगामी फर्क समझ लेना चाहिये और याद रखना चाहिये। दान मांगते हुअे यदि किसीको अिस तरह डराया-धमकाया जाय कि "सरकार भूमि-कानून बनायेगी और तुम्हारी जमीन चली जायगी, अिसलिअे यह बेहतर होगा कि तुम अुसे भूदानमें दे डालो" तो यह जोर-जबरदस्ती करने-जैसा ही होगा। कार्यकर्ताओंको समझ लेना चाहिये कि अिस तरहके अुपाय अुनके आदर्शको चोट पहुंचाते हैं और अुससे अुनका कार्य निर्जीव बनता है।

भूमि — जीवनकी बुनियादी जरूरत

हर मनुष्यको जीवनकी बुनियादी जरूरतें चाहिये। कुछ लोग दुःख भोगें और कुछ सुख, यह बात धर्मके खिलाफ है। कोअी आदमी हवा और पानीके स्वामित्वका दावा करे और अुन्हें दूसरोंको देनेमें पैसा मांगे, अिस बातकी कल्पना नहीं की जा सकती। हवा और पानीकी तरह जमीन भी मनुष्य-जीवनकी बुनियादी आवश्यकता है। अन्न जमीन पर ही अुगता है। अैसी जमीनको कोअी अपनी संपत्ति माने, दूसरोंको अुसका अुपयोग न करने दे और कहे कि वह अुसे पैसा लेकर ही देगा तो यह बात गलत होगी। लेकिन यह गलत बात चल गयी और अिसके कारण गरीबोंको बहुत तकलीफ अुठाना पड़ी। भूदान अिसी गलतीको सुधारनेका प्रयत्न है। जिस तरह प्यासेको पानी मिलना ही चाहिये, अुसी तरह किसानको जमीन मिलनी ही चाहिये। भूमिकी समस्या नयी नहीं पुरानी है और हमें अुसके समाधानकी कोशिश बहुत सावधानीसे करनी चाहिये।

अेक अुदाहरण

बहुत लोग अैसे भी हैं जिन्होंने संपत्तिका संग्रह कष्ट अुठाकर, कठिन परिश्रम करके प्रामाणिक रीतिसे किया है। बहुतसे अैसे हैं जिन्हें अपने पूर्वजों द्वारा अिसी तरह प्रामाणिक रीतिसे अुपार्जित संपत्ति अुत्तराधिकारमें प्राप्त हुअी है। अिस तरह यह समस्या

www.vinoba.in

बहुत सरल नहीं है। अेक-दो अेकड़ जमीन रखनेवाले प्राथमिक शालाके शिक्षककी स्त्री और बच्चोंकी बात सोचिये। यह शिक्षक ३५ वर्ष तक नौकरी करता रहा और प्रति माह अेक-दो रुपये बचाकर अुसने नौकरीके अन्तमें करीब अेक हजार रुपया अिकट्ठा किया। अिस रुपयेसे अुसने जमीन खरीदी, अिस आशासे कि वह अुसके द्वारा बुढ़ापेमें अपने परिवारका पोषण करेगा। लेकिन वह चल बसा और जमीन अुसकी स्त्रीके पास रह गयी। अब कल्पना किजिये कि कोअी भूदान कार्यकर्ता अुसके पास जाकर कहे कि "जिस जमीन पर तुम खुद खेती नहीं करती, अुसे अपने पास रखना दूसरोंका शोषण करना है; तुम्हें शोषण करना बन्द कर देना चाहिये।" तो वह स्त्री कहेगी कि "जिस जमीनको हमने जिन्दगी भरकी मेहनतके बाद पाया है, तुम चाहते हो कि हम अुसे यों ही छोड़ दें। हमें तो तुम ही असल शोषक मालूम होते हो।" तो यह समस्या बहुत अुलझी हुअी है। अुस पर सरकार और दूसरे लोग भी अपना ध्यान दे रहे हैं। कुछ लोग कानून चाहते हैं। कुछ कहते हैं कि पहले अुसे राष्ट्रकी संपत्ति बना देना चाहिये। तीसरा दल कहता है कि "जमींदार अपनी जमीन स्वेच्छासे नहीं छोड़ेंगे अिसलिअे हमें झगड़ा करना चाहिये और अुनसे अुसे जबरदस्ती छीन लेना चाहिये।"

भूदान धार्मिक कार्य है

हमारे देशकी पुरानी संस्कृति और पुरानी परंपराअें हैं। अिन परंपराओंके अनुरूप अपने सवाल हल करनेकी हमारी विशेष प्रणाली है। अिसीका नाम है सर्वोदय। कोअी आदमी दूसरोंका दुःख देखता है तो अुसके मनमें सहानुभूति पैदा होती है, करुणा जागती है। हमारा प्राचीन धर्म हमें प्रेरित करता है कि हम दुखियोंकी सहायता करना और भूखोंको खिलाना अपना कर्तव्य समझें। भूदान-आन्दोलन अिसी धर्मके अनुसार जमीनकी समस्या हल करना चाहता है।

जमींदारी कानूनके द्वारा खतम कर दी गयी तो अुसका यह परिणाम हुआ कि जमींदार सरकारसे नाराज हैं। राजाओंने अपने राज्य स्वेच्छासे छोड़ दिये, तो सरकार अुनके प्रति सहानुभूति रखती है। दान स्वेच्छासे किया गया कार्य है। समाजवादी लोग भूमि-कानून चाहते हैं। कम्युनिस्ट केवल कानून नहीं, कानूनसे कुछ अधिक चाहते हैं और कहते हैं कि अुनकी मांग पूरी न की गयी तो वे बलका प्रयोग करेंगे। दोनोंका अुद्देश्य वही है, लेकिन हम अुसे दानके जरिये सिद्ध करना चाहते हैं। अिसीको हम भूदान-आन्दोलन कहते हैं। वह लोगोंके हृदयोंमें करुणा जगाता है। अेक-दूसरेके लिअे प्रेम और करुणाका भाव ही भूदान-आन्दोलनमें मूर्तिमंत हुआ है।

आपको फल जल्दी मिले, अिसकी जल्दी नहीं करना चाहिये। फलकी अैसी आसक्तिसे नुकसान हो सकता है। सरकार अपने काममें जल्दी कर सकती है, हम नहीं। आप देखेंगे कि कभी अकस्मात् बहुत फल होता दिखेगा। अुदाहरणके लिअे, यदि किसी गांवमें कोअी आदमी स्वेच्छापूर्वक जमीन दे तो संभव है कि अुसके अिस कार्यका दूसरों पर तत्काल प्रभाव पड़े और दूसरे लोग भी आगे आयें और अपनी जमीनें दे डालें। भूमिदान अेक जागतिक आन्दोलन है।

भूमि गैर-जिम्मेवार मालिक नहीं चाहती

हमारे गांवोंमें अैसे अनेक गरीब किसान हैं जिन्हें खेतीका बहुत अच्छा अनुभव है और जो खेती करना चाहते हैं। अगर अुन्हें जमीनें दी जायं, तो अुत्पादन बढ़ेगा। अैसी खबर है कि अुत्तर भारतमें कअी जगह पूरेके पूरे गांव भूदानमें मिल रहे हैं। लेकिन यह बात हर जगह नहीं होगी। परिस्थितियां हर जगह अेक-सी नहीं हैं। अिसलिअे हमारा कर्तव्य है कि हम स्थानिक परिस्थितियोंके अनुसार कार्य करें और अिस तरह करें कि सबको सुख हो। अिस कामके लिअे प्रेम और करुणासे प्रेरित नवयुवकोंको आगे आना चाहिये और जमींदारोंको समझा-बुझाकर अुन्हें अपनी अतिरिक्त भूमि दानमें दे डालनेके लिअे राजी करना चाहिये। जिनके पास जमीन है, वे जानते हैं कि अुसकी अुचित व्यवस्था करनेमें क्या कठिनाअी होती है। जिनके पास आवश्यकतासे ज्यादा जमीन है अुन्हें तो और भी अधिक कठिनाअी होती है। तिरुक्कुरलमें कहा गया है कि जमीनकी अच्छी देख-भाल न की जाय, और अुसे ठीक न रखा जाय तो वह अपने मालिकसे नाखुश हो जाती है और अुसके पास रहना पसन्द नहीं करती।

सावधानीकी आवश्यकता

आन्दोलनको बहुत सावधानीके साथ आगे बढ़ाना है। अगर जल्दी परिणाम लानेकी कोशिश की गयी तो हिंसाके घुस आनेका डर है। जो बुद्धिमान और साथ ही भक्त भी हैं, अैसे लोगोंको आगे बढ़कर यह काम हाथमें लेना चाहिये।

भूमिका वितरण

प्राप्त भूमिका वितरण जरूर कठिन कार्य है। मेरी सूचना है कि यह काम दान जहां और जब मिलता है, वहीं और अुसी समय कर डालना चाहिये। अिसकी सावधानी रखना चाहिये कि नये मालिक भी अपनी जमीनके विषयमें वैसी ही आसक्ति न रखने लगें, जैसी कि मौजूदा मालिकोंमें पायी जाती है। वितरण-कार्यमें शायद सरकारी मददकी भी जरूरत हो। जमीन सुपात्र, अनुभवी और अुत्साही किसानोंको ही दी जानी चाहिये। जिनके पास खेतीके लिअे बैल आदि साधन तो हों पर जमीन न हो, अुनको भी जमीन मिलनी चाहिये।

(अंग्रेजीसे)

(चालू)

च० राजगोपालाचार्य

विविध विचार

कला और अंकुश-नीति

गांधीजीके स्मारकोंने देशमें अेक चिन्ता पैदा कर दी है। अभी तो अुनके अवसानको करीब आठ ही वर्ष पूरे हो रहे हैं, तब आगे और क्या होगा भगवान जाने! सच पूछो तो यह मूर्ति और स्तंभ खड़े करनेका विचार ही अजीब है। गांधीजी अिसे कभी अुत्तेजन नहीं देते थे। लेकिन अुनकी अिस महात्मा-दृष्टिका मानो अुन्हें दण्ड देना चाहते हों, अैसा व्यवहार अुनके स्मारक खड़े करनेवाले करने लगे हैं।

स्मारकोंके विषयमें अेक चिन्ता यह खड़ी हुअी है कि जहां-तहां गांधीजीके जो पुतले खड़े किये जाते हैं, वे अच्छे नहीं होते। अिसलिअे केन्द्रीय सरकारके शिक्षा-विभागने प्रांतीय सरकारोंको यह सलाह दी है कि 'किसी सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक मकानमें गांधीजीकी मूर्ति रखनेसे पूर्व अुसके लिअे अुच्च सत्तासे सम्मति प्राप्त करनी चाहिये।'

अिस बारेमें विचार करें तो दोनों ओरसे अिसमें बेहूदापन मालूम होता है। कला रुचिकी वस्तु है। और लोग भिन्न रुचिके होते हैं, यह भी सत्य ही है। तो फिर 'अुच्च सत्ता' के काबूका क्या अर्थ हुआ? कलाकार भी क्या अेक ही कृतिके बारेमें भिन्न राय नहीं रखते हैं? लोगोंकी रुचि पर भी सरकारी अिजाजतका अंकुश! यह तरीका ठीक नहीं है। लेकिन अिसका दूसरा पहलू देखें तो चाहे जैसी बेडौल मूर्तियां सार्वजनिक स्थानों पर रखनेसे हमारे लोगोंकी कलादृष्टिकी कीमत नहीं घट जायगी? विदेशी लोग हमारे विषयमें क्या सोचेंगे? आजकल सरकारको विदेशोंके अच्छे अभिप्रायकी बड़ी चिन्ता है, अिसलिअे वह दूसरे क्षेत्रोंमें न चुभे अैसी अंकुश-नीति कलाके क्षेत्रमें लादना चाहती है। लेकिन यह ठीक नहीं है। लोकरुचिका अिस तरह

www.vinoba.in

हरगिज विकास नहीं हो सकता। और भारत-सरकार अैसी मां-बाप-वादी पद्धतिसे काम करेगी, तो वह भी अिसके विकासमें बाधक होगी। अिसलिअे लोगोंके स्वाभाविक आचरण पर — सार्वजनिक नीति-मर्यादाके कारणके सिवा — अंकुश केवल लोकमतका ही सच्चा और अच्छा मानना चाहिये। लोकशिक्षण अिस लोकमतको सदा तालीम देता रहे, अिसका ध्यान रखना चाहिये। समाचारपत्र अिस दिशामें बहुत-कुछ कर सकते हैं।

२१-६-'५५

गांधी स्मारक-निधि

गांधी स्मारक-निधि भी मूर्तियां, स्तंभ आदि स्मारक खड़े करनेके तरीकेमें फंस गयी है। अभी अेक समाचार मिला कि देशमें कुछ स्थानों पर गांधी-स्तंभ खड़े किये जायंगे, चार स्मारक-धाम बनाये जायंगे और अनेक तख्तियां रखी जायंगी। यह समाचार पढ़कर मुझे कन्याकुमारीके अितने अल्प समयमें भग्न हुअे चूने-मिट्टीके स्मारककी बात याद आयी; अशोक स्तंभके टुकड़े याद आये। अिस क्षणभंगुर जगतमें अैसे स्मारकोंकी अमरतामें विश्वास रखकर काम करना भी अेक मायाका खेल ही है न? शिलालेख और शिल्प द्वारा अमर कीर्ति प्राप्त करनेकी वासना यदि रखें तो अिसके सिवा और हो भी क्या सकता है? अन्यथा अिसके पीछे जो खर्च होता है, अुस पर जरूर अंकुश लगाना चाहिये। लेकिन यह खर्च भी शादी-ब्याहमें होनेवाले खर्चके जैसा ही पागलपनभरा है। अिसलिअे अुस पर संयम न रहे यह भी सच है। संक्षेपमें, यह बात समझमें आने जैसी है कि गांधीजीके प्रति रहे प्रेमका अुभार अैसा रूप ले सकता है। किन्तु अिस बारेमें दीर्घदृष्टिसे विचार करना चाहिये; अितनी प्रौढ़ता लोकविचारमें आनी चाहिये। अिसमें गांधी-निधिकी बड़ी जिम्मेदारी है। मालूम नहीं निधिका कितना अंश वह खुद अिस प्रकारके कामोंमें खर्च करेगी। गांधीजीकी अिच्छाको मान देना हो तो अिस तरह अेक भी पाअी खर्च न की जानी चाहिये; बल्कि अुन्होंने भारतके गरीबोंके लिअे जो रचनात्मक कार्य बताये और आरंभ किये, अुनकी मददमें अुसका अुपयोग हीना चाहिये। वे गांधीजीके सच्चे और जीते-जागते स्मारक हैं। अिस दृष्टिसे अिस निधिके अुपयोगके बारेमें सावधानी रखनी चाहिये।

२१-६-'५५

अुच्च शिक्षाका माध्यम

देशकी शिक्षामें आजकल जो चल रहा है, वह अुसकी अुन्नतिकी दृष्टिसे प्रगति बताता है, यद्यपि अुस प्रगतिका प्रकार अभी तो नकारात्मक है। अुसके कारण पुरानी अंग्रेजी शिक्षाकी बराबर कलअी खुलती जा रही है, जो अब भी चल रही है; अतः अिच्छा-अनिच्छापूर्वक अिस संबंधमें विचार करना पड़ता है।

बम्बअी युनिवर्सिटीकी बात है। अुससे संबंधित कालेजोंके प्रिन्सिपालोंने अैसी बात कही कि नये भरती होनेके लिअे आये हुअे छात्रोंके साथ हमने सामान्य बातचीत अंग्रेजीमें की तो अुसमें भी अुन्हें कठिनाअी मालूम हुअी। तब फिर अुस भाषाके माध्यमका क्या होगा?

यह चीज नकारात्मक होनेके बावजूद प्रगतिकी सूचक है; क्योंकि यह बताती है कि जो चीज दूरंदेशीसे समझमें नहीं आती वह वस्तुस्थितिके प्रत्याघातसे समझमें आ जाती है। क्रान्तिका यही लक्षण है। और गांधीजीने बुनियादी शिक्षा द्वारा जिस क्रान्तिकी कल्पना की थी वह शुरू हो गअी है, यह अिस परसे देख सकते हैं।

अिसलिअे अब बम्बअी युनिवर्सिटीने माध्यमका विचार करनेके लिअे अेक समिति नियुक्त की है। देरसे ही क्यों न हो, पर जागे यह अच्छा हुआ। बड़ौदा युनिवर्सिटी अब तक नहीं जागी, यह बहुतोंको आश्चर्य लगता है। वहां भी प्रश्न तो अेकसा ही होगा। अिस बारेमें अब शुतुरमुर्गकी वृत्ति रखकर चलना नहीं पुसायेगा।

२१-६-'५५

अभिनन्दन

गुजरात युनिवर्सिटीके कालेजोंमें प्रथम वर्षकी पढ़ाअी अिस माहसे आरंभ होनेवाले सत्रसे गुजराती द्वारा शुरू होगी, यह बड़ी खुशीकी बात है। जो अध्यापक गुजरातीका अुपयोग नहीं कर सकेंगे, वे हिन्दी या दो-अेक वर्ष तक अंग्रेजी द्वारा भी काम चला सकेंगे। गुजरात यह क्रांतिकारी कदम अुठा रहा है, यह अुसके लिअे शोभाकी बात है। अिससे माध्यम-परिवर्तनका महान प्रयोग शुरू होगा और पढ़े-लिखे लोगोंको अिस सम्बन्धमें व्यर्थका जो भय है, वह भी अिससे दूर हो जायगा। हमें विश्वास है कि अैसा मानस-परिवर्तन करनेका यश हमारी युनिवर्सिटीके अध्यापक लेंगे।

२२-६-'५५

पुस्तक-परायण शिक्षण

पाठ्यपुस्तकोंके प्रश्नकी चर्चा पहले की जा चुकी है। यह डर सच साबित हुआ कि वे सब वक्त पर तैयार न हो सकीं। अिसकी पुकार अखबारोंमें आने लगी है। अिससे स्कूलोंके खुलते ही पुस्तकें नहीं मिल रही हैं। और अिस कारणसे स्कूल बन्द जैसे — नहींवत् — काम कर रहे हैं। क्योंकि पुस्तकोंके बिना पढ़ाया कैसे जाय?

यह भी नकारात्मक मदद करनेवाली घटना ही मानी जायगी। हमारी शिक्षण-पद्धति कैसी पुस्तक-परायण है, यह अिससे स्पष्ट हो गया। अिसके बारेमें सुधारक तो कह ही रहे थे, मगर शिक्षण-तंत्रके चलानेवालोंने अुसकी कोअी परवाह नहीं की। पढ़नेवालोंकी संख्या कम होनेके कारण किसी न किसी तरह गाड़ी चलती रहती थी। अब स्वराज्य आने पर शिक्षा बढ़ी; पुस्तकोंका प्रश्न (शिक्षणकी स्पष्ट नीति-दृष्टिको छोड़कर) धंधेका, नफेका, सरकारी अंकुशोंका — अिस प्रकार तरह तरहका बन गया। अिस कारण यह बात घपलेमें पड़ गअी और स्कूलोंका काम ठप हो गया। अिससे और कुछ नहीं तो अितना तो दिखाअी देता है कि हमारे शिक्षणकी कैसी लाचार स्थिति है।

शिक्षककी भी यह कैसी करुण दशा है कि पुस्तकें न हों तो वह पढ़ा नहीं सकता! क्या अुसके पास कुछ भी सिखानेको नहीं है? क्या अुसके पास अैसी कोअी पद्धति नहीं है, जो पुस्तक न होने पर भी काम दे सके? आजकल तरह तरहकी शिक्षण-पद्धतियोंकी योजना की जाती है। 'विज्युअल' — दृश्य पद्धतियां प्रसिद्ध हैं। 'वाच्य' यानी पुस्तक-परायण पद्धति अुसमें आ जाती है। लेकिन अुसके सिवा श्राव्य (लेक्चर) पद्धति भी है, जो अकसर कालेजोंमें चलती है। अिसका सुन्दर मिश्रण करके काम चलाया जा सकता है। लेकिन हमारे शिक्षणकी कठिनाअी यह है कि श्राव्य पद्धतिवाले जो कालेज हैं, वहां भी पुस्तक-परायण वाच्य-पद्धति घुस गअी है। नहीं तो वे माध्यम-परिवर्तन होने पर पुस्तकोंकी आवाज क्यों लगाते?

शिक्षाकी अुद्योग-पद्धति

यहां गांधीजीकी बुनियादी शिक्षाकी कल्पना याद आती है। वह कार्य-पद्धति है अथवा कहिये कि अुद्योग-पद्धति है। अुसके आसपास हम जरूरतके मुताबिक दृश्य, वाच्य और श्राव्य पद्धतिके अंशोंकी कार्य-साधक माला गूंथ सकते हैं। आजकलके स्कूलोंने यदि अिस अुद्योग-पद्धतिका स्वीकार किया होता तो वे पुस्तकोंके अभावमें बन्द न होते; वे अुद्योग द्वारा अपना काम बराबर

www.vinoba.in

चलाते। अिंग्लैण्डमें पिछले युद्धके समय स्कूलोंको खाली करके गांवोंमें ले जाया गया था। वहांके शिक्षकोंने तुरंत अनुरूप पद्धतिकी योजना करके काम चला लिया; अुस पद्धतिमें मुख्य चीज गांवकी खेतीके अुद्योगमें शामिल होना था। और अुस केन्द्रके आसपास शिक्षक बहुधा श्राव्य तथा दृश्य पद्धतिसे शिक्षण देते थे।

शिक्षणमें बाहरी मददका आडम्बर बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है। अुसमें क्या खतरा है, यह अूपरका किस्सा बतलाता है। यहां यह याद करने जैसा है कि बुनियादी शिक्षा पुस्तकोंको भी मर्यादामें रखकर काम करनेका ध्येय रखती है। और शिक्षाको अनिवार्य करना हो तो भारतके गरीब मातापिताके सिर पुस्तकोंका खर्च थोपना अशक्य है, यह भी नहीं भूलना चाहिये। मगर यह अेक अलग विषय है, जिस पर फिर कभी चर्चा करूंगा।

२२-६-'५५ मगनभाई देसाई

(गुजरातीसे)

हरिजनसेवक

३० जुलाअी १९५५

भूदान किसलिअे?

अखबारोंकी रिपोर्टसे पता चलता है कि बम्बअीके गवर्नर डॉ० महताबने भूदानके बारेमें यह राय जाहिर की है कि श्री विनोबाका भूदान-आन्दोलन भारतमें केवल 'गरीबीका बंटवारा' करता है। पता नहीं बम्बअी राज्यके गवर्नरने अैसे अेक आन्दोलनके बारेमें किस कारणसे यह बात कही, जिसे कम्युनिस्टोंके सिवाय आम तौर पर देशके सब लोग अच्छा और हितकारी मानते हैं। श्री महताबका कहना है कि भारतके सामने खड़ी सबसे बड़ी समस्या जमीनकी नहीं बल्कि गरीबीकी है। परंतु जमीन जैसी ठोस चीजको गरीबी जैसी सूक्ष्म स्थितिके साथ रखनेसे विचारकी स्पष्टता नहीं होती। श्री महताब यह मत प्रकट करते मालूम होते हैं कि* "जब तक जमीन पर प्रत्यक्ष काम करनेवाले काश्तकारके साथ न्याय किया जाता है और अुसे अपने परिश्रमके फलका न्यायपूर्ण हिस्सा मिलता है, तब तक कुछ लोगोंके हाथमें जमीनका कानूनी अधिकार होनेसे कुछ नहीं बिगड़ता।" अिसलिअे वे मानते हैं कि "जमीनका बुनियादी सवाल हल हो जायगा, अगर काश्तकारके अधिकारकी रक्षा की जाय और अुसे निश्चित बना दिया जाय", जैसा कि बम्बअी राज्यके काश्तकारी कानूनों द्वारा किया गया है।

अिसलिअे गवर्नर महोदयकी दलील है कि "काश्तकारको अपने परिश्रमके फलका न्यायपूर्ण हिस्सा मिल जाय, तो वह अिस बातकी परवाह नहीं करेगा कि जमीन पर किसका अधिकार है," और वे कहते हैं कि "अिस कारणसे भूदान-आन्दोलन वहीं प्रगति कर सकता है जहां काश्तकारी कानून नहीं है।"

अिसलिअे वे जमीन-मालिकों द्वारा जमीन पर अपना अधिकार कायम रखनेकी परवाह नहीं करेंगे, बशर्ते वे लगान और मौरूसी हकोंके बारेमें काश्तकारोंके साथ न्याय करें, अर्थात् अुन्हें अन्यायपूर्ण या गैरकानूनी ढंगसे बेदखल न करें या अुनसे मनमाना लगान वसूल न करें।

हम जानते हैं कि गांधीजी समाजवादियोंके साथ राजा-महाराजाओंके अस्तित्वके बारेमें कैसी दलील करते थे, जिन्हें समाजवादी खतम कर देना चाहते थे। गांधीजी कहते थे कि राजा-महाराजाओंका अन्त करनेके बजाय मैं अुनकी सेवाओंका लाभ अुठाना चाहूंगा, बशर्ते वे अपनी प्रजाके ट्रस्टी बन जायं और अुसकी सेवाके लिअे ही जियें और काम करें। मालूम होता है श्री महताब जमींदारोंके बारेमें भी यही दलील देना चाहते हैं। वे कहते हैं, "गरीबीकी आर्थिक समस्या हल करनेके संबंधमें महात्मा गांधी और आचार्य विनोबाके विचारों और पद्धतियोंकी तुलना करें तो पता चलता है कि बापूजीने गरीबीको दूर करनेका प्रयत्न किया, जब कि विनोबाजी गरीबीका बंटवारा कर रहे हैं। बापूजी धनियोंके लिअे संरक्षकताके सिद्धान्तकी हिमायत करते थे और धनिकोंसे यह महसूस कराना चाहते थे कि वे आम जनताके भलेके लिअे ट्रस्टीके नाते ही धन अपने हाथमें रखते हैं। दूसरी तरफ, विनोबाजी सबके समान हितके लिअे तुलनामें गरीब लोगोंसे भी जमीनका दान करनेके लिअे कहते हैं।"

डॉ० महताबने अिस बातकी भी आलोचना की है कि भूदानसे जमीनके और ज्यादा टुकड़े होंगे। अुन्हें यह भी लगता है कि बेजमीन लोग संभवतः जमींदार वर्ग जितने बुद्धिमान और योग्य नहीं होंगे, जिससे खेतीका ह्रास होगा। "अिसलिअे जमीन अुन लोगोंके अधिकारमें होनी चाहिये, जो जोतनेके ज्ञानके साथ 'जमीनसे आर्थिक दृष्टिसे अुत्तम फल प्राप्त करनेके लिअे संगठन और विकास करनेकी क्षमता व शक्ति रखते हैं।' अिससे हम अिस नतीजे पर पहुंचते हैं कि प्रत्येक मनुष्यके पास अितनी जमीन होनी चाहिये, जो आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद हो। . . . अगर काश्तकारके अधिकारोंकी रक्षा की जा सके और अुनकी गारंटी दी जा सके, तो जमीनकी बुनियादी समस्या हल हो जायगी।"

श्री महताबने गांधीजी और विनोबाजीकी दृष्टिमें जो सूक्ष्म भेद बताया है, वह मेरे खयालमें शास्त्रीय दृष्टिसे सही है। जमीनकी मालकियत और अुसके त्याग पर विनोबा जो जोर देते हैं, अुसका आधार अुनके अिस विश्वास पर है कि हवा, पानी, वगैरा कुदरती चीजोंकी तरह जमीन भी सबकी है और अिसलिअे अुस पर किसीकी मालकियत नहीं होनी चाहिये। यह विधान बोलनेमें जितना सही लगता है, अुतना तर्ककी दृष्टिसे सही नहीं है। जहां तक व्यवहारका संबंध है हम जानते हैं कि जमीन पर क, ख या ग का अधिकार रहेगा ही। ध्यान केवल अिस बातका रखना होगा कि यह अधिकार या मालकियत न्यायपूर्ण हो, आर्थिक दृष्टिसे ज्यादासे ज्यादा अुत्पादक हो तथा समाजका अधिकसे अधिक हित करनेवाली हो। अिसलिअे जमीन-संबंधी आर्थिक दृष्टिसे यह नियम हमेशा अच्छा ही माना जायगा कि काश्तकार जिस जमीनको जोतता है अुसके अुपयोगके लिअे जमीन पर अुसका निर्विवाद अधिकार होना चाहिये। वह कानूनन् अुस जमीनका मालिक हो तो अच्छा ही है। अिसके खिलाफ यह कहना ठीक नहीं होगा कि काश्तकार गैर-हाजिर जमींदारसे कम योग्य या कम बुद्धिमान होता है। यह स्थिति, अगर सच हो तो, अिस बातका परिणाम हो सकती है कि अभी तक अुसे योग्य या बुद्धिमान बननेके मौके ही नहीं दिये गये हैं।

यह आरोप भी अनुचित है कि भूदान जमीनके ज्यादा टुकड़े करता है, क्योंकि यह अुसके कार्यक्रमका अंग नहीं है। जैसा कि विनोबाजीने अेक बार कहा था, आज भारतमें ज्यादा बड़ी बुराअी तो दिलोंके टुकड़े हो जाना है, जिसे दूर करनेके लिअे वे कटिबद्ध हैं। यह काम वे दानकी अत्यन्त प्राचीन पद्धतिसे करना चाहते हैं। अुनका कहना है कि हमारे पास जो कुछ भी है, अुसका दान हम अुन लोगोंको दें जिनके पास कुछ नहीं है। अगर हमारे पास धनके रूपमें गरीबीकी विपुलता है तो हम अुसमें भी हिस्सा लें; अैसा करना सदा अुदात्त और जीवनदायी होगा। लेकिन अिसे 'गरीबीको बांटना' कहना बिलकुल गलत होगा। भूदान यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक काश्तकारके

* अिस लेखमें मैंने ११ जुलाअी, १९५५ के 'ट्रिब्यून' से सारे अुद्धरण दिये हैं।

www.vinoba.in

पास पांच अेकड़ जमीन होनी चाहिये। जमीनकी अिस अिकाअीको आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद बनानेके लिअे अिसके साथ ग्रामोद्योग, पशुपालन वगैरा जैसे सहायक धंधे जोड़े जाने चाहिये।

हम अपनी अुपेक्षित ग्राम-अर्थरचनामें जितने भी ग्रामोद्योगों और गृह-अुद्योगोंको पुनर्जीवन दे सकें अुतना ही अच्छा होगा। डॉ० महताबने अिसका अुल्लेख किया है। यह बात हमें भूलना नहीं चाहिये कि खेती हमारे देशका सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण अुद्योग है, जिसके साथ गोसेवा और छोटे पैमानेके अनेक अुद्योग जुड़े हुअे हैं। यह अपने-आपमें अेक संपूर्ण अिकाअी है। अुसका पुनर्गठन करके अुसे शक्तिशाली बनाना आजका सबसे आवश्यक और तत्काल करने योग्य काम है। खेती आज अत्यन्त कंगाल और अुपेक्षित स्थितिमें है। अुसकी अुन्नति और सुधारके लिअे हमें सीधा प्रयत्न करना चाहिये। अिससे आर्थिक और सामाजिक क्षत्रमें हमारी आधीसे ज्यादा भारी समस्या हल हो जायगी।

अैसा करनेमें हम अिस बातको न भूलें कि ग्रामोद्योगोंका खेतीके पूरक अुद्योगोंके रूपमें अनोखा स्थान है। अुनकी मददके बिना न तो खेती आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी सिद्ध हो सकती है, न ग्रामसमाज अपने योग्य अधिकार प्राप्त कर सकता है। अिसलिअे अिन अुद्योगोंका तुरन्त पुनर्गठन और पुनर्निर्माण होना चाहिये। बड़े अुद्योगोंकी स्थापनाके लिअे हमारे पक्षपात या बिना सोचे-विचारे की जानेवाली जल्दबाजीके कारण अिस बातका बड़ा डर है कि भारतकी सच्ची औद्योगिक समस्याकी ओर हमारा ध्यान ही न जाय; यह समस्या बड़े अुद्योगोंकी स्थापनाकी नहीं है — हालांकि अपने ढंगसे वे महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं — बल्कि संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्रका अुद्योगीकरण करनेकी है। यह ग्रामजनताके जीवन-मरणसे संबंध रखनेवाली समस्या है; केवल आर्थिक, औद्योगिक या पैसेकी समस्या नहीं है। यह भारतीय जनताके सबसे बड़े भागको छूती है, जिनके हितोंकी पिछली कुछ शताब्दियोंमें हमारे देशके तत्कालीन सत्ताधारियोंने पूरी अुपेक्षा की है। भूदान या अधिक योग्य शब्दोंमें सर्वोदय आन्दोलन अिस कामकी ओर हमारे लोगोंका ध्यान खींचनेका सच्चा प्रयत्न करता है, जो स्वराज्यका पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण काम है।

२१–७–'५५ **मगनभाई देसाई**
(अंग्रेजीसे)

पोप और गोआ

संपादकजी, हरिजन

अेक संवाददाता लिखता है कि अुसने गोआके बारेमें पुर्तगालके साथ हमारा जो झगड़ा चल रहा है अुसमें पोपसे भारतकी ओरसे हस्तक्षेप करनेके लिअे कहा है।

लेकिन यह भी कहा जाता है कि पोप राजनीतिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

वे राजनीतिक मामलोंमें हस्तक्षेप न कर सकते हों लेकिन पुर्तगालकी सरकारसे यह तो जरूर कह सकते हैं कि वह अिस मामलेमें अीसाअी धर्मकी नैतिक शिक्षाके प्रकाशमें व्यवहार करे। अीसाअी धर्मकी नैतिक शिक्षा दूसरे धर्मोंकी नैतिक शिक्षासे भिन्न नहीं है। सारे धर्म अपने अनुयायियोंको यह आदेश करते हैं कि वे लोभ और अहंकारका त्याग करें और सामान्य जीवन तथा राजनीति और राष्ट्रीय तथा आन्तरराष्ट्रीय मामलोंमें अपने मानव-बंधुओंके साथ अपने व्यवहारमें अीमानदार, सत्यनिष्ठ, विनयशील और न्यायपरायण हों, ताकि दुनियाके देशोंमें शान्ति, समृद्धि और सुखका साम्राज्य फैले।

यदि पोर्तुगीज सरकार अिस अुदात्त नैतिक शिक्षाका अनुसरण करेगी, तो वह धार्मिक अीमानदारी और न्यायका अनुरोध स्वीकार करेगी और गोआ भारतको दे देगी। "धर्मका अर्थ नीतिका आचरण ही तो है।"

(अंग्रेजीसे) **सोराबजी आर० मिस्त्री**

सबके लिअे शिक्षण

बम्बअीसे प्रकाशित होनेवाला 'अिकॉनामिक रिव्यू' अपने ९ जुलाअी, १९५५ के अंकमें पूछता है, "भारतके सारे बालकोंको स्कूलमें भेजनेका खर्च क्या होगा?" और अपने पहले पृष्ठके 'शिक्षण सबके लिअे नहीं' नामक संपादकीय लेखमें अिस प्रश्नकी चर्चा करता है। बेशक यह प्रश्न बिलकुल सामयिक है, हालांकि थोड़ा बेचैन करनेवाला है — विशेषतः हमारे योजनाकारोंके लिअे, क्योंकि वे आवश्यक धनके अभावकी दलील देकर अिससे बच नहीं सकते; अैसा करें तो अुन्हें कड़ी टीकाका सामना करना पड़े। अुपरोक्त सम्पादकीय लेख प्रश्नके अिस पहलूका अुल्लेख करते हुअे कहता है:

> "सच है कि अिस तरहका प्रश्न पूछनेमें हम पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि अैसा करके हम सादी चीजोंको पेचीदा बना रहे हैं। क्या अिस खर्चका अन्दाज बहुत साल पहले सार्जण्ट योजनामें नहीं लगाया गया था? तब तो अंग्रेज भी यहीं थे। लेकिन तबसे आज तककी अवधिमें कअी बातें हो चुकी हैं और न केवल भारतके, बल्कि दूसरे अर्ध-विकसित देशोंके शिक्षाशास्त्री और शिक्षाकार भी अिस बातको समझ गये हैं कि और किसी कारणसे नहीं तो केवल खर्चके ही कारण प्रचलित ढंगके प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षणका अितना विस्तार नहीं किया जा सकता, जिसमें अमुक अुम्रके सारे बालकोंकी बात तो छोड़ दें अुनके अेक बड़े भागको भी शिक्षण दिया जा सके। अिसलिअे अेशियाअी देशोंके शिक्षाशास्त्रियोंने, जो कुछ साल पहले 'युनेस्को' के आश्रयमें बम्बअीमें मिले थे, विकल्प रूपमें बुनियादी तालीमकी पद्धतिकी संभावनाओं पर ग़हरा विचार किया।"

बुनियादी तालीमके अिस पहलू और गुण पर, जिसे आज भुला दिया गया है या जिस पर हमारी शैक्षणिक और आर्थिक योजना आवश्यक ध्यान नहीं देती, पत्रने जो प्रकाश डाला है अुसके लिअे मैं अुसे बधाअी देता हूं। हम जानते हैं कि यही वह मुद्दा था जिसने गांधीजीको यह सुझानेकी प्रेरणा दी थी कि बुनियादी तालीम ही शिक्षाकी अैसी अेकमात्र पद्धति है जो भारतके लिअे सबसे ज्यादा अनुकूल है।

अिसने शिक्षा देनेकी नअी पद्धति ही नहीं सुझाअी, बल्कि अुसके साथ भारतमें अंग्रेजी शिक्षणकी पुरानी पद्धतिमें भी सुधार किया। महात्मा गांधीने बुनियादी तालीम द्वारा केवल शिक्षण-शास्त्रसे संबंध रखनेवाला सुधार ही नहीं बताया; वह हमारे देशमें जीवन और शिक्षण दोनोंकी पुनर्रचनाका बुनियादी सुधार था। बुनियादी तालीमका विचार पुरानी और सड़ी-गली अंग्रेजी शिक्षा-पद्धतिकी साहसभरी टीका और अुसमें क्रान्तिकारी सुधार करनेका शक्तिशाली कार्यक्रम था। 'अिकॉनामिक रिव्यू' का संपादकीय नीचेकी बात कहते समय अिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्देको, जो बुनियादी तालीमका केन्द्रबिन्दु है, भूल जाता है:

> "लेकिन बुनियादी तालीमकी पद्धति अपनी शैक्षणिक सिद्धान्तकी श्रेष्ठताके कारण नहीं, बल्कि अपने दुनियवी अर्थ-शास्त्रके कारण ही दूसरे अर्ध-विकसित देशोंको जंची। पुराने ढंगके स्कूलोंमें लाखों-करोड़ों बालकोंको शिक्षा नहीं दी जा सकती। तो वे अैसे ढंगसे शिक्षा लें जो अुन्हें जीवनके लिअे तैयार करते हुअे भी बहुत खर्चीला न हो। अन्तिम विश्लेषणमें पैसेका प्रश्न ही शिक्षणकी गतिको धीमी कर देता है, क्योंकि जैसा हमेशा देखा जाता है अुस पर और ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्योंका भारी तकाजा होता है।"

www.vinoba.in

महात्मा गांधीने अुत्पादक श्रम या अुद्योगके जरिये शिक्षा देनेकी बात सुझाअी, तब अुनकी दृष्टि तत्काल प्राप्त होनेवाले आर्थिक या पैसेके लाभ पर ही नहीं थी, बल्कि अुन्होंने अपने सहज ज्ञानसे अिस पद्धतिके अत्यन्त स्वाभाविक और शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त ठोस ढंगसे संपूर्ण मानवको शिक्षण देनेके अुदात्त गुणको भी पहलेसे ही समझ लिया था। अुन्होंने कहा था:

"समस्त राष्ट्रकी दृष्टिसे हम शिक्षामें अितने पिछड़े हुअे हैं कि अगर शिक्षा-प्रचारके लिअे केवल धन पर ही निर्भर रहेंगे, तो अेक निश्चित समयके अन्दर राष्ट्रके प्रति अपने फर्जको अदा करनेकी आशा हम कभी कर ही नहीं सकते। अिसलिअे मैंने यह सुझानेका साहस किया है कि शिक्षाको हमें स्वावलंबी बना देना चाहिये, फिर भले लोग मुझे यह कहें कि मेरे अन्दर किसी रचनात्मक कार्यकी योग्यता नहीं है। शिक्षासे मेरा मतलब है बच्चे या मनुष्यकी तमाम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंका सर्वतोमुखी विकास। अक्षरज्ञान न तो शिक्षाका आरंभ है और न अंतिम लक्ष्य। अिसलिअे बच्चेकी शिक्षाका प्रारंभ मैं किसी दस्तकारीकी तालीमसे ही करूंगा और अुसी क्षणसे अुसे कुछ निर्माण करना सिखा दूंगा। अिस प्रकार हरअेक पाठशाला स्वावलंबी हो सकती है। शर्त सिर्फ यह हो कि अिन पाठशालाओंकी बनी चीजें राज्य खरीद लिया करे।

"मेरा मत है कि अिस तरहकी शिक्षा-पद्धति द्वारा अूंचीसे अूंची मानसिक और आध्यात्मिक अुन्नति प्राप्त की जा सकती है। सिर्फ अेक बातकी जरूरत है। वह यह कि आजकी तरह प्रत्येक दस्तकारीकी केवल यांत्रिक क्रियायें सिखाकर ही हम न रह जायं, बल्कि बच्चेको प्रत्येक क्रियाका कारण और पूर्ण विधि भी सिखा दिया करें।"*

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालयने दूसरी पंचवर्षीय योजनामें शामिल करनेके लिअे अपने कार्यक्रमका जो मसौदा तैयार किया है, अुस पर अपनी चर्चाका अन्त करते हुअे 'अिकॉनामिक रिव्यू' कहता है:

"अगर संविधानके अनिवार्य प्राथमिक शिक्षण-संबंधी आदेशको शीघ्र पूरा करना हो, तो खर्चका ज्यादा अुपयुक्त मापदण्ड और अुसे प्राप्त करनेके वैकल्पिक साधन देशके सामने रखे जाने चाहिये। जो लक्ष्य सिद्ध करना है अुसे भी स्पष्ट और सीधे शब्दोंमें बता देना चाहिये। क्योंकि अब वह समय आ गया है कि शिक्षणको राज्य या स्थानीय अर्थतंत्रकी मनमानीसे मुक्त किया जाय और भारतके सारे बालकोंके लिअे शिक्षणका अेक ही स्तर सुलभ बनाया जाय, भले वे किसी भी राज्यके हों। यह कमसे कम मांग है जो पूरी की जानी चाहिये।"

बुनियादी तालीमके विचारमें जैसी दीर्घकालिक योजनाकी कल्पना की गअी है वैसी किसी योजनाके बिना शिक्षाके विस्तारके लिअे आजकी तरह पैसे खर्च करना अुनकी अक्षम्य बरबादी होगी। अिससे हमारा लक्ष्य सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि अिस रास्तेसे चलनेमें प्रचलित पद्धतिकी अननुकूलता और दूसरे जाने हुअे दोषोंके अलावा हमें आवश्यक पैसेके अभावकी मजबूत दीवालका सामना करना पड़ेगा। बड़ा अच्छा हो अगर हमारे शिक्षा-मंत्रालय अगले पांच वर्षोंके लिअे अपनी योजनायें तैयार करते समय प्रश्नके अिस पहलू पर भी गहरा विचार करें।

१४-७-'५५
(अंग्रेजीसे)

मगनभाई देसाई

* 'बुनियादी शिक्षा'—पृष्ठ १०-११; कीमत १-८-०, डाकखर्च ०-६-०।

गांव बनाम शहर

अखबारोंकी खबर है कि अनाज, मूंगफली अित्यादिके भाव, जो बिलकुल गिर गये थे, फिर २५ से ५० प्रतिशत तक चढ़ गये हैं। अिसका कारण केन्द्रीय सरकारकी निर्यात-नीति और वैगन मिलनेकी कठिनाअी बताअी जाती है।

भाव सुधरे यह अच्छा हुआ लेकिन पूरी तरह अच्छा ही हुआ, अैसा नहीं कहा जा सकता। आजकलका बाजार और अुनका भाव-ताव जादू और जुअे जैसा है। जो लोग गांवोंमें मेहनत करके कच्चा माल पैदा करते हैं, वे अिस विषयमें कुछ अधिक नहीं जानते। अुनके भाग्यमें तो बस जी-तोड़ मेहनत करना ही बदा है। अुनके मालको यहांसे वहां ले जाकर बेचने और मुनाफा खानेका काम दूसरे लोग करते हैं।

बात यह है कि जब व्यापारियोंको माल खरीदना होता है—यानी जब फसल पककर तैयार होती है—अुस समय भाव गिर गये। जो लोग पैदा करते हैं, अुनके यानी किसानोंके पास पैसेका अैसा मजबूत धारण-बल नहीं होता कि वे अुस समय अपना माल बेचना बन्द रख सकें। सैकड़ों वर्षोंसे हमारे देशके पूंजीपति किसानोंकी अिस स्थितिका लाभ अुठाते आये हैं और वही आज भी चल रहा है।

गिरे हुअे भावोंमें माल खरीदनेके बाद अब भाव चढ़ रहे हैं। प्रश्न अुठता है कि कहीं हमेशा अैसा ही तो नहीं होता रहता? यदि कोअी अर्थशास्त्री अिस बातकी जांच करे और वह सच सिद्ध हो तो आश्चर्य नहीं होगा।

जिन्होंने अुसे पैदा किया है अुन्हें और दूसरे लोगोंको अब वही माल महंगे भावसे लेना पड़ेगा। मंहगाअीका मुनाफा पूंजीवाले व्यापारी खायेंगे। अिस मुनाफेसे वे शेअर खरीदेंगे, नये कारखाने खोलेंगे, और भी जो चाहेंगे सो करेंगे। गरज यह कि अिसके परिणामस्वरूप ग्रामोद्योग गिरेंगे, लेकिन चंद लोगोंके पास बहुत लाभ और बड़ी पूंजी अिकट्ठी हुअी मालूम होगी।

अिस विनाशकारी तस्वीरको जब तक बिलकुल मिटा नहीं दिया जाता, तब तक गरीबोंको सुख नहीं हो सकता। यह काम अुनके हाथमें ही है; वे अुसे आसानीसे कर सकते हैं। लेकिन वे अुसे समझें तब न? आज तो वे भी यंत्रोद्योगके सस्ते मालके मृगजलमें मर रहे हैं।

* * *

अितना लिखनेके बाद अंग्रेजीमें, गांवोंमें लोगोंको कर्जकी सुविधाओंके प्रश्न पर अेक लेख देखा (अिन्डियन अफेयर्स रिकार्ड, जून, १९५५, पृ० १)। लेखक सहकारी आन्दोलनकी चर्चा करते हुअे लिखता है कि अुसकी निष्फलताके अनेक कारण बताये जाते हैं पर असली कारण भिन्न है। यह कारण 'अखिल भारत ग्राम-ऋणकी जांच' की रिपोर्टमें बताया गया है। यह कारण अितना गहरा और व्यापक है कि वह केवल सहकारी आन्दोलनको ही नहीं, हमारे समूचे अर्थतंत्रकी दुर्दशाको लागू पड़ता है। अुक्त रिपोर्ट अिस कारणका वर्णन अिस प्रकार करती है:

"भारतमें दूसरे देशोंसे बिलकुल भिन्न नीचे लिखे लक्षण अिकट्ठे मिलते हैं—१. गांवोंका सामाजिक-आर्थिक तंत्र मुख्यतः जाति पर आधारित है; २. अिस तंत्रके अूपरी स्तरके लोग नगद पैसेके लेन-देनके साथ गुंथे हुअे हैं और शासन व्यवस्था शहरोंमें केन्द्रित हो गयी है; और ३. भारतमें तीन अैसी प्रक्रियायें आपसमें मिलजुल कर काम करती थीं जिसके कारण ये सब लक्षण अेकसाथ गुंथ गये।"

यह अुद्धरण देनेके बाद लेखक अपनी बात कहता है:

"ब्रिटिश राज्यके आनेके बाद गांवोंका अर्थतंत्र साम्राज्यकी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाकी आवश्यकताओंके अनुरूप बनाया गया। साम्राज्यकी अर्थव्यवस्थाकी अेक विशेषता शुरूमें यह थी कि अमुक शहरों और बंदरोंसे कच्चा

www.vinoba.in

माल बाहर भेजा जाता था। अिसके बाद धीरे-धीरे देशमें पूंजीका विकास हुआ। लेकिन गांवके अर्थतंत्रका हेतु तो ज्योंका त्यों बना रहा — यानी शहरोंके अुद्योगोंकी मांग पूरी करते रहना। व्यापार और पूंजीका तंत्र भी शहरोंके पक्षमें और गांवोंके हितके विरोधमें ही विकसित हुआ। गांवोंकी खानगी साहूकारी पेढ़ियां शहरके व्यापारी आर्थिक हितोंके साथ जुड़ गयीं। यानी जाने-अनजाने ये पेढ़ियां शहरी हितोंके दलालकी तरह ही गांवोंमें काम करती थीं। अैसी बिलकुल विषम परिस्थितिमें सहकारी आन्दोलनका टिकना असंभव-सा ही था।"

गांवोंमें पैदा हुअे कच्चे मालके भाव-तावका विचार करनेवाले अब अूपरकी अिस अत्यंत महत्त्वकी बात पर ध्यान दें तो अच्छा हो। गांवोंमें से कच्चे मालको खींचकर शहरों और बंदरोंमें लाने और फिर अुसे विदेश भेजनेके लिअे गांवोंसे लेकर ठेठ विदेश तक दलालों और आढ़तियोंकी अेक लम्बी सांकल बन गयी। अिस सांकलके जरिये नकद पैसेकी युक्ति देशका कच्चा माल ढोकर ले जानेमें अच्छा काम देती है। अिस युक्तिके दाव भावोंके चढ़ा-अुतरीके बाजारोंमें खेले जाते हैं। नयी योजनाका कर्तव्य है कि वह अिस जालको खोले और अुसे गांवोंके हितमें नयी तरहसे संघटित करें। अिसके लिअे अपने अर्थतंत्र, व्यापार-तंत्र, शासन-तंत्र आदि सबमें मूलगामी परिवर्तन करना होगा, क्योंकि अुपर्युक्त दोष अिनमें भी घुस बैठा है। अुसे दूर करके भारतके सच्चे हितमें सम्पूर्ण नयी योजना करनेके लिअे नयी दृष्टिवाले अर्थशास्त्री और शासनिक अधिकारी चाहिये, यह स्पष्ट है।

१४–७–'५५ मगनभाई देसाई
(गुजरातीसे)

विश्वविद्यालयोंका दिल किस बातमें

बम्बअीके 'टाअिम्स' पत्रमें यह खबर छपी है कि बम्बअी विश्वविद्यालयकी तरफसे अेक तालीम वर्ग खोला गया है, जिसकी खूबी यह है कि वह भारतके विश्वविद्यालयोंके अितिहासमें अनोखा और अपूर्व है। अिस वर्गका अुद्देश्य विदेश जानेवाले भारतीय विद्यार्थियोंको वहांके रहन-सहनकी जानकारी कराना है। छुरी-कांटा कैसे पकड़ा जाय, अुनका अुपयोग कैसे किया जाय, सुड़कनेकी आवाज किये बिना प्रवाही भोजन कैसे खाया जाय, विलायतमें कहां रहा जाय, आपसमें कैसे मिला जाय, मिलते समय कैसा बरताव किया जाय वगैरा अनेक विषयोंकी शिक्षा जानकार अध्यापक और सरकारी अधिकारी लोग देंगे। विदेशी राजदूतावासके लोग अिसमें मदद करेंगे।

बात तो अच्छी है। विदेश जानेवाले विद्यार्थी अैसी कुछ बातें पहलेसे जान लें तो अनजान देशमें अुन्हें असुविधा न भोगनी पड़े। लेकिन विचित्र बात तो और ही है। दीर्घकालके बाद अन्तमें जब अंग्रेजी हुकूमत बिदा हो गअी, तब बम्बअी विश्वविद्यालयको यह वर्ग खोलनेकी अकल कहांसे सूझी? और स्वराज्य आनेके बाद जब शिक्षा-संबंधी अनेक प्रकारके नये-नये काम हमारे सामने पड़े हैं — अुदाहरणके लिअे, हिन्दीकी शिक्षा, श्रमशिविर – व्यवस्था, ग्रामसेवा, गांवोंके देशबंधुओंके साथ कैसे व्यवहार किया जाय, वगैरा — तब अिनमें से अेक भी न सूझे और कुछ अंगुलियों पर गिनने लायक लोगोंकी जरूरतके लिअे विशेष वर्ग खोला जाय, यह कैसी बात है? अिससे पता चलता है कि अिस शिक्षण-संस्थाके अपने सेवाक्षेत्रके विषयमें क्या खयाल हैं। बेशक, बम्बअी नगरीका अंग्रेजी राज्यने विकास किया है; परंतु अुसका विश्व-विद्यालय अिस बातको भूलता मालूम होता है कि अुस नगरीका मुख्य काम भारतकी और अुसकी जनताकी सेवा करना है। यह छोटीसी खबर बताती है कि विश्वविद्यालयके संचालकोंका दिल दरअसल किस बातमें है।

१२–७–'५५ म० प्र०
(गुजरातीसे)

'नींवमें से निर्माण' — ३

अब हम देशमें आजकल काम-धंधेके पैटर्नका विचार करें। अिस सिलसिलेमें पहला महत्त्वका मुद्दा जिसका हमें विचार करना चाहिये राष्ट्रीय आयके पैटर्नका है। नीचे दिये जा रहे आंकड़े अुस पर प्रकाश डालते हैं*:

स्रोत	आय (करोड़में)
बड़े पैमानेवाले अुद्योग	५५०
छोटे पैमानेवाले अुद्योग	९००
खेती	४८००

ये आंकड़े बताते हैं कि खेती और छोटे पैमानेवाले अुद्योग हमारी राष्ट्रीय आयके मुख्य स्रोत हैं। जैसा स्वाभाविक है हमारी जनसंख्याका सबसे ज्यादा भाग अुन्हींमें लगा हुआ है। नीचे दिये जा रहे दो कोष्ठक अिस संबंधमें ध्यान देने योग्य हैं:

भारतमें काम-धंधेका पैटर्न

कोष्ठक — १

भारतकी जनसंख्याका वितरण

		लाखोंमें
(अ)	प्रदेशवार	
	१. देहाती	२९५०
	२. शहरी	६१९
	३. कुल	३५६९
	४. १ला आंकड़ा ३रे का कितने प्रतिशत है	८२.७
(ब)	जीविकाके अनुसार	
	१. खेती	२४९१
	२. खेती-भिन्न	१०७६
	३. कुल †	३५६७
	४. १ला ३रेका कितने प्रतिशत है	६९.८+

"जनसंख्याका प्रदेशवार और जीविकावार बटवारा (कोष्ठक – १) बतलाता है कि भारतकी जनसंख्याका ८२.७ प्रतिशत देहाती है और अुसका ६९.८ प्रतिशत अपनी जीविकाके लिअे खेती पर निर्भर करता है। नीचे कोष्ठक – २ में बताया गया है कि भारतमें काम करनेवाले आदमियोंकी वास्तविक संख्याका बटवारा कैसा है। अुससे भी भारतके आर्थिक जीवनमें खेतीका महत्त्व प्रगट होता है।" ('नींवमें से निर्माण', पैरा २४)

कोष्ठक — २

काम करनेवालोंकी वास्तविक संख्या

	स्वावलंबी	कमाअू आश्रित	कुल (लाख)
खेतीवाले	७१०	३१०	१०२०
खेतीवालोंसे भिन्न दूसरे	३३४	६९	४०३
कुल	१०४४	३७९	१४२३×

'नींवमें से निर्माण' पुस्तिका काम-धंधेकी स्थितिका विश्लेषण और आगे करते हुअे कहती है:

"काम-धंधेकी हालतके संबंधमें प्राप्त वर्गीकृत जानकारी, जो नीचे कोष्ठक – ३ में दी गयी है, बताती है कि देशके काम

* देखिये 'हरिजनसेवक', १९–६–'५४, पृ० १२५, 'सामान्य जनके हितकी दृष्टिसे अर्थ-योजना करें'।

† दोनों योगोंमें जो फर्क है अुसका कारण पंजाबमें करीब २.५ लाख जन-गणना संबंधी पर्चियोंका गुम जाना है।

+ मूलस्रोत: सेन्सस ऑफ अिन्डिया, पेपर नं० ३, १९५३, समरी टेबिल्स १ और ४

× मूलस्रोत: सेन्सस ऑफ अिन्डिया, पेपर नं० ३, १९५३, समरी टेबल ४

www.vinoba.in

करनेवालोंमें सबसे ज्यादा संख्या स्वतंत्र काम-धंधा करनेवाले लोगोंकी ही है। अिन आंकड़ोंकी परीक्षा और वारीकीसे की जाय तो मालूम होगा कि स्वतंत्र काम-धंधा ही काम-धंधेका सबसे प्रमुख रूप है। कृषिरूप अुद्योगोंमें लगे हुअे ७८ प्रतिशत और खेतीसे भिन्न दूसरे अुद्योगोंमें लगे हुअे ५० प्रतिशत आदमी स्वतंत्र काम करनेवाले ही हैं। सरकारी नौकरियोंको अलग कर दिया जाय तो खेती और खेती-भिन्न दूसरे अुद्योगोंमें काम करनेवालोंकी कुल संख्याका ७१.३ हिस्सा स्वतंत्र काम करनेवालोंका है।" (पैरा २६)

कोष्ठक — ३

स्वतंत्र काम करनेवालोंकी संख्या *

	खेती	खेती-भिन्न अुद्योग	कुल (लाख)
१. स्वतंत्र काम करनेवाले	५४५	१६५	७१०
२. कुल अुत्पादक काम-धंधा करनेवाले (सरकारी नौकरियों समेत)	६९४	३२४	१०१८
३. कुल अुत्पादक काम-धंधा करनेवाले (सरकारी प्रशासनिक नौकरियां छोड़कर)	६९४	३०२	९९६
४. १ला २रेका कितने प्रतिशत है	७८.५	५०.९	६९.७
५. १ला ३रेका कितने प्रतिशत है	७८.५	५४.६	७१.३×

स्वतंत्र काम-धंधा और राष्ट्रीय आय

"स्वतंत्र काम-धंधा न सिर्फ देशमें प्रचलित काम-धंधेका प्रमुख रूप है, बल्कि वह भारतकी राष्ट्रीय आयका सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण साधन है। विविध क्षेत्रोंमें स्वतंत्र काम करनेवाले व्यक्तियोंकी आय क्या है, अिसके संबंधमें विस्तृत आंकड़े अुपलब्ध न होनेके कारण यह ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता कि कुल राष्ट्रीय आयमें स्वतंत्र काम-धंधेवाले सेक्टरका क्या योग है। नीचे कोष्ठक—४ में जो आंकड़े दिये जा रहे हैं वे अिस धारणा पर आधारित हैं कि किसी सेक्टरमें स्वतंत्र काम-धंधेवाला आदमी भी अुस सेक्टरमें काम करनेवाले लोगोंकी औसत आयके बराबर कमाता है। अिसलिअे अिन आंकड़ोंको स्वतंत्र काम-धंधेवाले सेक्टरके वास्तविक योगका नहीं, संभाव्य योगका ही सूचक मानना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें कोष्ठक—४ बतलाता है कि संघटन-संबंधी तथा दूसरी अुपयुक्त सहायता मिलती तो सन् १९५०-५१ में भारतकी राष्ट्रीय आयमें ४९.९ प्रतिशत हिस्सा अकेले स्वतंत्र काम-धंधेवाले सेक्टरका ही होता।" (पैरा २७)

कोष्ठक — ४

राष्ट्रीय आयमें स्वतंत्र काम-धंधेका योग

	कमानेवालोंकी संख्या (लाख)	कमानेवाले प्रतिव्यक्तिकी आय रुपये	कुल आय रुपये (करोड़)
१. खेतीसे होनेवाली आय	५४५	५००	२७२५
२. खेती-भिन्न दूसरे अुद्योगोंसे होनेवाली आय	१६५	१२३२	२०३२
३. कुल	७१०	६७०	४७५७
४. राष्ट्रीय आय	१४२३	६७०	९५५०
५. ३ रा ४थेका कितने प्रतिशत है	४९.९		४९.९+

* अिस कोष्ठकमें दिये गये आंकड़ोंमें अुन कमाअू आश्रितों और स्वावलंबी व्यक्तियोंका समावेश नहीं किया गया है जिनकी मुख्य आय वास्तविक कामसे अुत्पन्न नहीं होती।

× मूलस्रोत: सेन्सस ऑफ अिन्डिया, पेपर नं० ३, समरी टेबिल ४ और ५

+ मूलस्रोत: १. राष्ट्रीय आय कमेटीकी अन्तिम रिपोर्ट, टेबिल ३०। २. टेबिल ४ (पहलेका)

अिस तरह:

"भारतमें काम-धंधेकी रचनाका जो ढांचा है, अुसका विश्लेषण जोरके साथ सिद्ध करता है कि भारतकी अर्थ-रचनामें स्वतंत्र काम-धंधेका सबसे ज्यादा प्रचार है और वह काम-धंधेका प्रमुख रूप है।" (पैरा २८)

"लेकिन यहां अेक मुद्दा याद रखने जैसा है। स्वतंत्र काम-धंधा आज जिस रूपमें चल रहा है वह न तो व्यक्तिको पूरा काम देता है और न अैसा है कि अुसके सारे व्यक्तित्वको पोषण दे सके। अिसलिअे स्वतंत्र काम-धंधेवाले सेक्टरमें अुत्पादनकी दर अुसकी अपनी जरूरतें पूरी करने और आगे आर्थिक विकास करनेके लिअे आवश्यक पर्याप्त पूंजीका निर्माण करनेके लिअे नाकाफी है।" (पैरा २९)

"यद्यपि संख्या और कुल अुत्पादनकी दृष्टिसे स्वतंत्र काम-धंधेका क्षेत्र सबसे महत्त्वपूर्ण है, किन्तु संघटन और पूंजीकी सम्पूर्ण कमीके कारण आज वह कमजोर है और अुसके क्रमशः नष्ट हो जानेका खतरा अुपस्थित हो गया है। अिसका खास कारण यह है कि मौजूदा आर्थिक रचना अुसके अस्तित्व और मूल्यकी अुपेक्षा करती है। अेक तो अुसे पुनः सुस्थित करनेकी कोअी संघटित योजना नहीं है, दूसरी ओर अुसे लगातार औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रोंका दबाव सहना पड़ता है; अिन कारणोंसे अुसकी हालत बिलकुल ही खराब हो गयी है। अिनके सिवा अुसके औजार भी जितने सक्षम होने चाहिये, अुतने सक्षम नहीं हैं। अिससे अुसके अुत्पादनकी दर अपेक्षाकृत नीची है। लेकिन अुसे पुनः सुस्थित करनेका कोअी कार्यक्रम तो तभी हो सकता है, जब पहले अुसका महत्त्व पहिचान लिया जाय और यह स्वीकार किया जाय कि आर्थिक दृष्टिसे बखूबी चल सकनेकी क्षमता अुसमें है और सामाजिक दृष्टिसे मूल्यवान् विकास-योजनाको वह न केवल शुरू कर सकता है बल्कि अुसे टिकाये रखनेकी ताकत भी रखता है।' (पैरा ३०)

"अिस तरह हम देखते हैं कि स्वतंत्र काम-धंधेका सबसे बड़ा गुण अिस समय अुसकी लोगोंको काम-धंधा देनेकी क्षमता है। स्वतंत्र काम-धंधेके क्षेत्रका आर्थिक और सामाजिक दृष्टिसे अुतना ही मूल्य रखनेवाला अेक दूसरा गुण यह है कि वह राष्ट्रीय आयमें अेकदम वृद्धि करना शुरू कर देता है; यहां पूंजी लगायी और वहां अुत्पादन शुरू हुआ; बीचमें समय जाया बिलकुल नहीं जाता।" (पैरा ३२)

अंतमें अब अुसके व्यावहारिक पहलूकी यानी भारतमें अिस तरहके काम-धंधेके लिअे कितना अवकाश है, अिस बातकी जांच करना और रह जाता है।

९-७-'५५ (चालू)
(अंग्रेजीसे) **मगनभाई देसाई**

विषय-सूची

		पृष्ठ
भूदान — प्रेम और करुणाका आन्दोलन	च० राजगोपालाचार्य	१६९
विविध विचार	मगनभाई देसाई	१७०
भूदान किसलिअे?	मगनभाई देसाई	१७२
सबके लिअे शिक्षण	मगनभाई देसाई	१७३
गांव बनाम शहर	मगनभाई देसाई	१७४
'नींवमें से निर्माण' — ३	मगनभाई देसाई	१७५
टिप्पणियां:		
पोप और गोआ	सोराबजी मिस्त्री	१७३
विश्वविद्यालयोंका दिल किस बातमें	म० प्र०	१७५

www.vinoba.in